॥ दोहा ॥

जय जय तुलसी भगवती, सत्यवती सुखदानी।

नमो नमो हरि प्रेयसी, श्री वृन्दा गुन खानी॥

श्री हरि शीश बिरजिनी, देहु अमर वर अम्ब।

जनहित हे वृन्दावनी, अब न करहु विलम्ब॥

॥ चौपाई ॥

धन्य धन्य श्री तलसी माता। महिमा अगम सदा श्रुति गाता॥

हरि के प्राणहु से तुम प्यारी। हरीहीँ हेतु कीन्हो तप भारी॥

जब प्रसन्न है दर्शन दीन्ह्यो। तब कर जोरी विनय उस कीन्ह्यो॥

हे भगवन्त कन्त मम होहू। दीन जानी जनि छाडाहू छोहु॥

सुनी लक्ष्मी तुलसी की बानी। दीन्हो श्राप कध पर आनी॥

उस अयोग्य वर मांगन हारी। होहू विटप तुम जड़ तनु धारी॥

सुनी तुलसी हीँ श्रप्यो तेहिं ठामा। करहु वास तुहू नीचन धामा॥

दियो वचन हरि तब तत्काला। सुनहु सुमुखी जनि होहू बिहाला॥

समय पाई व्हौ रौ पाती तोरा। पुजिहौ आस वचन सत मोरा॥

तब गोकुल मह गोप सुदामा। तासु भई तुलसी तू बामा॥

कृष्ण रास लीला के माही। राधे शक्यो प्रेम लखी नाही॥

दियो श्राप तुलसिह तत्काला। नर लोकही तुम जन्महु बाला॥

यो गोप वह दानव राजा। शङ्ख चुड नामक शिर ताजा॥

तुलसी भई तासु की नारी। परम सती गुण रूप अगारी॥

अस द्वै कल्प बीत जब गयऊ। कल्प तृतीय जन्म तब भयऊ॥

वृन्दा नाम भयो तुलसी को। असुर जलन्धर नाम पति को॥

करि अति द्वन्द अतुल बलधामा। लीन्हा शंकर से संग्राम॥

जब निज सैन्य सहित शिव हारे। मरही न तब हर हरिही पुकारे॥

पतिव्रता वृन्दा थी नारी। कोऊ न सके पतिहि संहारी॥

तब जलन्धर ही भेष बनाई। वृन्दा ढिग हरि पहुच्यो जाई॥

शिव हित लही करि कपट प्रसंगा। कियो सतीत्व धर्म तोही भंगा॥

भयो जलन्धर कर संहारा। सुनी उर शोक उपारा॥

तिही क्षण दियो कपट हरि टारी। लखी वृन्दा दुःख गिरा उचारी॥

जलन्धर जस हत्यो अभीता। सोई रावन तस हरिही सीता॥

अस प्रस्तर सम ह्रदय तुम्हारा। धर्म खण्डी मम पतिहि संहारा॥

यही कारण लही श्राप हमारा। होवे तनु पाषाण तुम्हारा॥

सुनी हरि तुरतहि वचन उचारे। दियो श्राप बिना विचारे॥

लख्यो न निज करतूती पति को। छलन चह्यो जब पारवती को॥

जड़मति तुहु अस हो जड़रूपा। जग मह तुलसी विटप अनूपा॥

धग्व रूप हम शालिग्रामा। नदी गण्डकी बीच ललामा॥

जो तुलसी दल हमही चढ़ इहैं। सब सुख भोगी परम पद पईहै॥

बिनु तुलसी हरि जलत शरीरा। अतिशय उठत शीश उर पीरा॥

जो तुलसी दल हरि शिर धारत। सो सहस्त्र घट अमृत डारत॥

तुलसी हरि मन रञ्जनी हारी। रोग दोष दुःख भंजनी हारी॥

प्रेम सहित हरि भजन निरन्तर। तुलसी राधा में नाही अन्तर॥

व्यन्जन हो छप्पनहु प्रकारा। बिनु तुलसी दल न हरीहि प्यारा॥

सकल तीर्थ तुलसी तरु छाही। लहत मुक्ति जन संशय नाही॥

कवि सुन्दर इक हरि गुण गावत। तुलसिहि निकट सहसगुण पावत॥

बसत निकट दुर्बासा धामा। जो प्रयास ते पूर्व ललामा॥

पाठ करहि जो नित नर नारी। होही सुख भाषहि त्रिपुरारी॥

॥ दोहा ॥

तुलसी चालीसा पढ़ही, तुलसी तरु ग्रह धारी।

दीपदान करि पुत्र फल, पावही बन्ध्यहु नारी॥

सकल दुःख दरिद्र हरि, हार ह्वै परम प्रसन्न।

आशिय धन जन लड़हि, ग्रह बसही पूर्णा अत्र॥

लाही अभिमत फल जगत, मह लाही पूर्ण सब काम।

जेई दल अर्पही तुलसी तंह, सहस बसही हरीराम॥

तुलसी महिमा नाम लख, तुलसी सूत सुखराम।

मानस चालीस रच्यो, जग महं तुलसीदास॥